|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 9: राजविद्याराजगुह्ययोग

3/3 (श्लोक 22-34), शनिवार, 08 फ़रवरी 2025

विवेचक: गीता विशारद डॉ. संजय जी मालपाणी

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/NEzj8OTY0Ow

भक्ति के लिए उपासना और समर्पण चाहिए

श्री कृष्णाष्टकम्, कृष्ण भजन, परम्परागत रीति से श्लोक गायन के साथ दीप प्रज्वलन व गुरु वन्दना के पश्चात् विवेचन का आरम्भ हुआ।

पिछले विवेचन में श्लोक सङ्ख्या बीस और इक्कीस को थोड़ा-थोड़ा समझा था। ये दोनों ही श्लोक चर्चा के श्लोक हैं। पुनरावृत्ति करने से अच्छा रहेगा।

एक मात्र यज्ञ कर लेने से ही सोमरस का पान करने वाले को स्वर्ग लोक व देव दुर्लभ भोग भी प्राप्त हो सकते हैं पर एक शर्त है, वो क्या है? निष्पाप होना होगा। पाप मुक्त रहना होगा। मन में पाप का भाव है या किसी के हाथों से पाप हो गया, गलती हो गयी, यह भाव निरन्तर हमारे अन्दर काँटे की तरह चुभता रहता है, हमारी नींद को बाधित कर देता है और हमारे अवचेतन मन में चुभता रहता है। जब तक ये चुभन समाप्त नहीं होती तब तक स्वर्ग लोक की प्राप्ति नहीं होती। मित्रों ने कहा, श्रीभगवान ने भी यह बात कही है कि सोमरस पान करने वाला, एक यज्ञ करके स्वर्ग लोकों के भोगों की प्राप्ति कर लेगा। वस्तुतः उसका उल्टा अर्थ उन लोगों ने ले लिया।

चलते चलते अनजाने में पैर से कीट-पतङ्ग मर जाते हैं, रसोई में अग्नि जलाने से उसकी ऊष्मा से चारों तरफ के जीव मर जाते हैं। इस तरह कुछ पाप अनजाने में करते हैं, कुछ हम जान-बूझ कर करते हैं। हमारा अन्तर्मन सो रहा होता है, तब हमें पता भी नहीं होता है, पाप हो रहें हैं। ऐसे पाप का परिमार्जन आवश्यक है। जिस क्षण पाप हुआ है, इसका बोध होता है, उसी क्षण पाप का परिमार्जन होना प्रारम्भ हो जाता है।

पाप मुक्ति की दिशा में यह पहला कदम होता है। जिसकी इस पाप के कारण हानि हुई है, उससे क्षमा माँगनी चाहिए। हमारे मित्र, रिश्तेदार को कहें कि कुछ ऐसी घटना घटी, जिसके कारण अपनी मित्रता और प्रेम के रिश्ते में शत्रुता का भाव आ गया, मुझे क्षमा कर दें। जिस क्षण यह मुँह से निकला, पाप का काँटा निकल गया। अगर ये पाप के, विषय वासना, क्रोध के काँटे मन में रह गये, तो मन आत्मा से चिपक कर उसे बाँधेगा, मनुष्य की मुक्ति भी नहीं होगी। अन्त समय में मन निष्पाप, निर्लेप हो जाना चाहिए। पाप की मुक्ति को आगे के श्लोक में बताते है।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं

क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एव त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते।।9.21।।

निष्पाप लोगों को स्वर्ग के भोग उनके जितने पुण्य होते हैं, उसी के अनुसार उतने दिनों तक के लिए मिलते हैं। जैसे उधार देने वाले पत्र में खर्च की जितनी सीमा होती है, उतने ही दिन हम किसी पाँच सितारा आवास में रह सकते हैं। सीमा के समाप्त होते ही व्यक्ति को निकाल दिया जाता है। हमारे पुण्य समाप्त होते ही स्वर्ग लोक से मृत्यु लोक, पृथ्वी पर लौट कर आना पड़ता है। मनुष्य का पृथ्वी पर जन्म होता है। आना-जाना चलता रहता है।

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं,
पुनरपि जननी जठरे शयनम् ।

हमारे पुण्य ऐसे हो कि हमें वापस लौट कर नहीं आना पड़े। हम अक्षुण्ण पुण्यों से स्वर्गलोक क्या, कैलाश लोक, वैकुण्ठ लोक तक भी जा सकते हैं, वहाँ से हमें लौट कर नहीं आना होगा। फिर चिन्ता की कोई बात भी नहीं रहेगी।

9.22

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां(यँ), ये जनाः(फ्) पर्युपासते।
तेषां(न्) नित्याभियुक्तानां(यँ), योगक्षेमं(वँ) वहाम्यहम्॥9.22॥

जो अनन्य भक्त मेरा चिन्तन करते हुए (मेरी) भली भांति उपासना करते हैं, (मुझ में) निरन्तर लगे हुए उन भक्तों का योगक्षेम (अप्राप्त की प्राप्ति और प्राप्त की रक्षा) मैं वहन करता हूँ।

विवेचन- यह श्लोक अद्‌भुत श्लोक है। इस एक श्लोक से ही गीता समझ ही नहीं आ गयी, जीवन में भी आ गयी। "पर्युपासते", उपासना शब्द दो शब्दों से बना है। उप और आसन। उप का अर्थ है, पास में और आसन का अर्थ है, बैठना। अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करते हुए, जो मेरे पास में बैठ जाता है, उसको मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

आसन शब्द अष्टाङ्ग योग का शब्द है। महर्षि पतञ्जलि ने आठ अङ्गों में योग को बाँटा है और उसके सूत्र दे दिए हैं। गीता जी में इन आठ अङ्गो का इतना विस्तार किया गया है कि उसको समझने के बाद अष्टाङ्ग योग आसानी से समझ में आ जाएगा।

1) यम,
2) नियम,
3) आसन,
4) प्राणायाम,
5) प्रत्याहार,
6) ध्यान,
7) धारणा,
8) समाधि।

क्रम से योग के ये आठ अङ्ग हैं। इसमें आसन योग का तीसरा अङ्ग है।
हम लोग उचित आसन में श्रीभगवान के पास बैठ जायें। आसन कई प्रकार के होते हैं।

आलथी-पालथी मार कर पद्मासन, वज्रासन, वीरासन, स्वस्तिक आसन, सुखासन में घण्टों बैठने का अभ्यास करना चाहिए। कुछ पल में ही पीठ के निचले हिस्से में दर्द, पैर में चीटियाँ रेंगती हुई लगती है। योगासन का सही उद्देशय यह हुआ कि हम साधना में ठीक से बैठ पाएँ। हमारी पीठ, कमर, पैरों की क्षमता बढ़े।

सीधा बैठने से हमारा श्वास लेने का विशेष अङ्ग (DIAPHRAGM) खुल जाता है। विद्यालय में अध्यापक सीधे बैठने को बोलते हैं। सीधे बैठने से आँते नीचे उतर जाती है, उसके सहारे से डायफ्रॉम (Diaphragm) भी नीचे उतर जाता है। जगह मिलने से फेफड़े खुल जाते हैं, उनकी श्वास लेने की क्षमता भी बढ़ जाती है। फेफड़ों में श्वास भरने की क्रिया को प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम सही हो इसके लिए आसन हैं। ठीक से बैठ कर श्वास लेने से मस्तिष्क को पाँच गुणा वायु मिलती है। उससे सजगता बढ़ जाती है। अवचेतन मन सचेतन हो जाता है। मन और साँस का गहरा सम्बन्ध है। हमारे मन को सजग करने का एक मात्र साधन है, प्राण और अपान।

'प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ"।।

आसन की कुछ विशेष बातें-

श्रीभगवान के सामने बैठे तो चार से पाँच इञ्च ऊँचा पाटा ले लें। उस पर नितम्बों पर जोर देकर सीधे बैठें। पैरों को नीचे लटका कर, आलथी पालथी में बैठे। पैरों के नीचे आसन हो, ताकि साधना से बनने वाली ऊर्जा पृथ्वी के चुम्बकीय आकर्षण से पृथ्वी में न समा जाये। इसके लिए सबसे श्रेष्ठ आसन प्राचीन समय में स्वतः मरे हुए हिरण की खाल से बने हुए आसन होते थे। अब वैसे आसन उपलब्ध नहीं होने से पैरों के नीचे ऊनी आसन का प्रयोग कर सकते हैं। कुर्सी पर भी सीधे बैठ सकते हैं। किन्तु शरीर का ज़ोर जङ्घाओं पर होना चाहिए। अधिक शुद्ध हवा श्वास से मिलने से अवचेतन मस्तिष्क में सचेतनता आती है। पीठ और पैरो में भी पीड़ा नहीं होती। साधना में आनन्द आने लगता है।

स्थिरम्, सुखम्, आसनम्, महर्षि पतञ्जलि द्वारा आसन की व्याख्या की गयी है।

प्राणायाम में भस्त्रिका व कपालभाति से मस्तिष्क में शुद्ध हवा की मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाती है। कपालभाति के बाद आँख बन्द कर के देखें तो अनुभव में आएगा, श्वास रुक गयी है। प्राणायाम से कुछ पलों के लिए श्वास नहीं लेते, कारण शुद्ध हवा की मात्रा शरीर में बहुत अच्छे से पहुँच जाती है। कपालभाति से कुम्भक की प्रक्रिया पूरी हो जाती है।

तभी श्रीभगवान को अनन्य भाव से, समर्पण के भाव से याद कर सकेंगे। इसी को उपासना कहते हैं।

इस प्रकार नित्य परमात्मा से युक्त होकर जो उपासना करता है, उसमें मैं भी युक्त हो जाता हूँ। वह एक पग आगे बढ़ाता है, तो मैं दस पग उसकी और बढ़ाता हूँ।

योगक्षेमं वहाम्यहम्।

श्रीभगवान भाव के भूखे हैं। भाव परोसते हैं, तो श्रीभगवान दौड़े दौड़े आते हैं। श्रीभगवान योगक्षेम की ज़िम्मेवारी स्वयं पर ले लेते हैं। मनुष्य मोक्ष और परम् पद को पाने की अपेक्षा छोटे-छोटे संस्थाओं के छोटे पदों के लिये आपस में शत्रुता कर लेते हैं। श्रीभगवान ने ग्यारहवें अध्याय में विराट रूप को दिखाया तो अर्जुन को कहा कि तू निर्वैर हो जा। अध्यक्ष या महिला सङ्गठन की मन्त्री नहीं बनाने मात्र से शत्रुता कर कर लेते हैं। उस भाव का विस्तार होने से पहले विसर्जन हो जाना चाहिए। बड़े ध्येय के लिए छोटी बात को भूलना पड़ेगा। सबको क्षमा करें। सोलहवें अध्याय में विस्तार से आया है कि क्षमा दैवीय गुणों में से एक है। श्रीभगवान का चिन्तन करते रहना चाहिए। आज ही कविता दीदी ने दीप प्रज्वलन के समय बहुत सुन्दर बात कही।

शत्रुबुद्धि विनाशाय, दीप ज्योति नमोस्तुते।

शत्रुता वाली बुद्धि का विनाश कर देना।

महिला मण्डल का अध्यक्ष बनना कोई बुरी बात नहीं है। एक साल का कार्य काल पूर्ण होने पर लोगों को धन्यवाद देना चाहिए कि आप सब के सहयोग से इतना कार्य हुआ। आने वाले नए सदस्य को भी साथ देने की बात कहना चाहिए। उसके शुभ का चिन्तन करना चाहिए। जो दूसरे के आनन्द में आनन्द मनाते हैं, जो दूसरे के दुःख से दुःखी होते हैं, वे ही जीवन में सफल होते हैं। मोक्ष को प्राप्त होते हैं। इसके विपरीत स्वभाव वाले नरक भोगते हैं।

अनन्य भाव से श्रीभगवान का चिन्तन करना चाहिए। श्रीभगवान ने इसीलिए कहा है कि युद्ध के समय भी मेरा ही चिन्तन कर। माम शब्द श्रीकृष्ण ने अपने लिए नहीं कहा है, श्रीभगवान के लिए कहा गया है। महाभारत में भगवान कृष्ण ने जहाँ भी बोला है, वहाँ वासुदेव उवाच कहा गया है। गीताजी के अट्ठारह अध्यायों में श्रीभगवान उवाच कहा गया है। वहाँ भगवत् तत्त्व कृष्ण को माध्यम बना कर कह रहे हैं। परमात्मा की उपासना की बात बतायी है, तभी योगक्षेमं वहाम्यहम की बात है।

9.23, 9.24

येऽप्यन्यदेवता भक्ता, यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय, यजन्त्यविधिपूर्वकम्।।9.23।।
अहं(म्) हि सर्वयज्ञानां(म्), भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति, तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते।।9.24।।

हे कुन्तीनन्दन! जो भी भक्त (मनुष्य) श्रद्धापूर्वक अन्य देवताओं का पूजन करते हैं, वे भी मेरा ही पूजन करते हैं, (पर करते है) अविधिपूर्वक अर्थात् देवताओं को मुझसे अलग मानते हैं।
क्योंकि सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता और स्वामी भी मैं ही हूँ; परन्तु वे मुझे तत्त्व से नहीं जानते, इसी से उनका पतन होता है।

विवेचन- श्रद्धा और विधिपूर्वक सकाम भाव से की हुई अन्य देवी देवताओं की पूजा भी, श्रीभगवान कहते कि वो मेरी ही पूजा होती है। हमारी पूजा डर से होती है। मनोकामना कर के ग्यारह रूपए का प्रसाद और एक नारियल चढ़ा कर श्रीभगवान को प्रसन्न करना चाहते हैं। वे तो प्रेम और भाव के भूखे हैं। हम उनको ग्यारह रूपए से खरीदना चाहते हैं।

योगक्षेमं वहाम्यहम्।

हमारे लिए क्या सही है व क्या गलत है, वह श्रीभगवान जानते हैं। हमें तो हर क्षण, हर क्रिया में श्रीभगवान का धन्यवाद ज्ञापन करना चाहिए।
हम चारों तरफ आँख उठा कर देखें तो पायेंगे कि किसी के हाथ नहीं है, कोई दोनों आँखों से देख नहीं सकता, कोई गूँगा, बहरा, मन्दमति है। हमको श्रीभगवान ने सबकुछ दिया है, उनका धन्यवाद करें। हमारे यहाँ तो यह पद्धति है कि प्रातः उठ कर धरती पर पैर रखने के पहले उसको प्रणाम करते हैं। श्रीभगवान को स्मरण करके यह कहना चाहिए कि धन्यवाद, आपने जगा दिया। हमारी स्मृति उठने के बाद लौट आयी है।

हमारे यहाँ पृथ्वी, भारत और गङ्गा को माता कहा गया है। कुम्भ में गङ्गाजी में पैर रखने के पहले उसका जल माथे पर चढ़ाते हैं, कहते हैं, माता तेरे सीने पर पैर रखूँगा, छोटा बच्चा हूँ, गोद में उठा लेना। मुझे नहला देना, शुद्ध पवित्र-पावन कर देना। इस भाव के साथ पवित्र गङ्गा के जल में धीरे-धीरे पग आगे बढ़ाते हैं।

वरना अहङ्कार आ जाता है कि तीस हजार की हवाई जहाज़ की टिकट ली है। वहाँ आगे-पीछे विशेष गाड़ी चली। दस-पाँच लोगों को रोक कर स्नान किया। गङ्गा में उतर कर भी अगर अहङ्कार का विलय नहीं किया तो पाप कहाँ से छूटेगा?

हमारे यहाँ तो स्नान करते हुए भी यह मन्त्र बोलने की प्रथा है-

गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जले अस्मिन् सन्निधिम् कुरु।।

माता मेरे पास रहना, चन्दा मेरा मामा है, तुलसी माता है। शकुन्तला ससुराल जाते समय रोते हुए, तुलसी आदि पेड़-पौधों का स्पर्श कर के कहती हैं कि ये मेरे भाई-बहन हैं, इनके साथ बचपन से खेली हूँ। तुलसी और फूलों को उतारते हुए, यह भाव रहता है कि एक भी पत्ती, पङ्खुड़ी नीचे नहीं गिर जाए। इस भाव से श्रीभगवान को पुष्प चढ़ाने से अनन्याशचिन्तयंतो माम् घटेगा।

विधिपूर्वक पूजा में देवताओं के आह्वान के पहले श्रीभगवान का आह्वान किया जाता है। देवता अलग है, श्रीभगवान अलग हैं। मानव जन्म मिला है तो देवताओं की उपासना भी करनी पड़ेगी, क्योंकि जीवन यापन करना है।

हर कार्य के लिए प्रधानमन्त्री को तो याद नहीं कर सकते। नल में पानी नहीं आ रहा है, बिजली नहीं आ रही है, तो उससे जुड़े हुए विभागों से सम्पर्क करना होगा। विधिपूर्वक पूजा में मात्र देवताओं व श्रीभगवान का ही नहीं, कुल देवता, ग्राम देवता, स्थान देवता, पितरों का भी आह्वान किया जाता है, पूजा की जाती है कि कोई भी नाराज न हो जाए, उसके बाद यज्ञ शुरू किया जाता है। यह सकाम पूजा भी विधिपूर्वक की जाये तो सारे यज्ञों के भोक्ता भी श्रीभगवान ही हैं। इस परम् तत्त्व को जो नहीं जानते हैं, वे आवागमन के चक्र में पड़ जाते हैं। उनका पुनर्जन्म होता है। पुनर्जन्म से बचना है तो क्या करना चाहिए और वे कहाँ पहुँचते हैं, यह आगे के श्लोक में देखते हैं।

9.25

यान्ति देवव्रता देवान्, पितृन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या, यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।।9.25।।

(सकाम भाव से) देवताओं का पूजन करने वाले (शरीर छोड़ने पर) देवताओं को प्राप्त होते हैं। पितरों का पूजन करने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं। भूत-प्रेतों का पूजन करने वाले भूत-प्रेतों को प्राप्त होते हैं। (परन्तु) मेरा पूजन करने वाले मुझे ही प्राप्त होते हैं।

विवेचन- देवता की पूजा करने वाले देवलोक में, पितरों की पूजा करने वाले पितृ लोक में, भूतों की पूजा करने वाले भूतों को जाकर मिलेंगे। मेरी पूजा करने वाले मुझे मिलेंगे। चुनना आपको है कि आप किसकी पूजा करना चाहते हैं। श्रीभगवान की पूजा करेंगे तो पुनर्जन्म भी नहीं होगा और परमात्म तत्त्व की प्राप्ति होगी। श्रीभगवान की अपेक्षा बहुत छोटी है। अगले श्लोक में श्रीभगवान बताते हैं।

9.26

पत्रं(म्) पुष्पं(म्) फलं(न्) तोयं(यँ), यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं(म्) भक्त्युपहृतम्, अश्नामि प्रयतात्मनः॥9.26॥

जो भक्त पत्र, पुष्प, फल, जल आदि (यथासाध्य एवं अनायास प्राप्त वस्तु) को प्रेमपूर्वक मेरे अर्पण करता है, उस (मुझमें) तल्लीन हुए अन्तःकरण वाले भक्त के द्वारा प्रेमपूर्वक दिये हुए उपहार (भेंट) को मैं खा लेता हूँ अर्थात् स्वीकार कर लेता हूँ।

विवेचन- प्रेमपूर्वक भाव से सिक्त होकर श्रीभगवान के परायण होकर तुलसी, पुष्प आदि उतारना चाहिए। तुलसी तोड़ना नहीं उतारना कहते हैं। पुष्प उतार कर इतनी दूर कर के ले जाना कि उसकी सुगन्ध स्वयं को न आये। श्रीभगवान के पहले सुगन्ध स्वयं ले ली तो श्रीभगवान को क्या अर्पण किया? भाव से तुलसी और पत्र, पुष्प चढ़ाना चाहिए। हम लोग फलों में सबसे छोटा फल श्रीभगवान को अर्पण करने के लिए ले जाते हैं। पूजा की सुपारी, खाने की सुपारी भी अलग-अलग होती है। किस भाव से

जा रहे हैं? यह श्रीभगवान समझ जाते हैं। श्रीभगवान के लिए सर्वोत्तम वस्तु भावपूर्वक ले जाना चाहिए। वह न बन पड़े तो जल से भक्ति भाव से अभिषेक कर देना चाहिए। ऐसे भक्तों की पूजा श्रीभगवान प्रसन्न होकर स्वीकार करते हैं। भोजन भी तेरे कारण ही पाया है, वही तुझे अर्पण करने आया हूँ। अत्यन्त आर्त भाव से भर कर श्रीभगवान को भोजन पवायें, मन पवित्र बन जाता है। भोजन भी पवित्र प्रसाद बन कर रोग मुक्त बनायेगा। भोजन करते समय क्रोध या अन्य कोई नकारात्मकता नहीं होनी चाहिए। भोजन में नमक न भी हो तो यह सोचना चाहिए कि जब श्रीभगवान ने ही खा लिया, तो मुझे भी खा लेना चाहिए। भोजन के लिए श्रीभगवान को धन्यवाद देना चाहिए। सहायता करने वाले को भी धन्यवाद देना चाहिए।

9.27

यत्करोषि यदश्नासि, यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय, तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।9.27।।

हे कुन्तीपुत्र ! (तू) जो कुछ करता है, जो कुछ भोजन करता है, जो कुछ यज्ञ करता है, जो कुछ दान देता है (और) जो कुछ तप करता है, वह (सब) मेरे अर्पण कर दे।

विवेचन- श्रीभगवान कह रहे है, जो भी कर्म करता है, हवन, दान करता है, खाना खाता है, तपस्वी का तप वो सब मेरे को समर्पित करता चल। घर से दुकान जाते समय भी यह भाव रखें, श्रीभगवान की प्रदक्षिणा दे रहा हूँ। किसी से बात भी कर रहा हूँ, तो श्रीभगवान के स्रोत का गायन कर रहा हूँ। सोने जा रहे हैं तो भी कहें धन्यवाद, सोने जा रहा हूँ। सम्भाल लेना। हर दैनिक क्रिया में श्रीभगवान को याद करना चाहिए। हर आती-जाती श्वास में उनके नाम का स्मरण या किसी मन्त्र को बोलना चाहिए। किसी का भी मन्त्र हो।

कृष्ण कहो या राम
सबसे सुन्दर हैं दो नाम।

आदि शङ्कराचार्य जी ने मानस पूजा के बारे में जो बताया उसमें यह बात है।

आत्मा त्वं गिरिजा मति: सहचरा: प्राणा: शरीरं गृहं।
पूजा ते विषयोपभोग-रचना निद्रा समाधिस्थिति:
संचारं पदयो: प्रदक्षिण-विधि:स्तोत्राणि सर्वागिरो ,
यद्यद कर्म करोमि तत्तद्खिलं शंभो तवाराधनं।

आदि शङ्कराचार्य जी का श्लोक है। मन, वचन, कर्म से जो भी क्रिया हो रही है, वह तुम्हारी आराधना बन जाए। आपका कर्म शुभ है या अशुभ उससे कुछ भी अन्तर नहीं पड़ेगा।

9.28

शुभाशुभफलैरेवं(म्), मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा, विमुक्तो मामुपैष्यसि।।9.28।।

इस प्रकार (मेरे अर्पण करने से) कर्म बन्धन से और शुभ (विहित) और अशुभ (निषिद्ध) सम्पूर्ण कर्मों के फलों से (तू) मुक्त हो जायगा। ऐसे अपने सहित सब कुछ मेरे अर्पण करने वाला (और) सबसे सर्वथा मुक्त हुआ (तू) मुझे प्राप्त हो जायगा।

विवेचन- सारे कर्म श्रीभगवान को अर्पित करने से, संन्यासयोग से युक्त मन वाले के सारे शुभ-अशुभ कर्म बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। ऐसे लोगों का श्रीभगवान से मिलने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है, इसलिए श्रीभगवान अर्जुन को कह रहे हैं, अर्जुन! दुर्योधन, दु:शासन, भीष्म, द्रोणाचार्य सभी आततायी हैं, इन्हें मार।

क्यों मार? क्योंकि भरी सभा में अबला द्रौपदी का चीर हरण हुआ था। किसी भी स्त्री का चीर हरण होना बहुत बड़ा अपराध है। यह कोई छोटी बात नहीं है। इन्हें कर्त्तव्य की भावना से मार, न कि इनके लिए मन में बैर का भाव हो। अर्जुन तू क्षत्रिय है और आततायियों को मारना तेरा कर्त्तव्य है। श्रीभगवान कह रहें हैं कि ये तो पहले ही मेरे द्वारा मारे जा चुके हैं। तू तो अर्जुन निमित्त मात्र बन जा। इनको मारने का सम्पूर्ण श्रेय तुमको प्राप्त हो।

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथाऽन्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्।।11.34।

हे अर्जुन! तू मैं, मेरा से ऊपर उठ जा। ये मेरे पितामह हैं, गुरुजी हैं, मेरे साले, ससुरजी हैं, सब छोड़ दें। कर्त्तव्य का पालन कर।

जैसे-जैसे श्रीभगवान ने उपदेश किया, अर्जुन का मेरा शेष हो गया, अर्जुन मैं और तू पर आ गया। अभी भी अर्जुन का मैं नहीं गया। जब मैं चला जाता है, तू रह जाता है, तब श्रीभगवान अपने स्वरूप में प्रकट होते हैं।

9.29

समोऽहं(म्) सर्वभूतेषु, न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां(म्) भक्त्या, मयि ते तेषु चाप्यहम्।।29।।

मैं सम्पूर्ण प्राणियों में समान हूँ। (उन प्राणियों में) न तो कोई मेरा द्वेषी है (और) न कोई प्रिय है। परन्तु जो प्रेमपूर्वक मेरा भजन करते हैं, वे मुझ में हैं और मैं भी उनमें हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान सभी में व्याप्त हैं। उन्हें कोई भी प्रिय-अप्रिय नहीं हैं। अन्तिम श्लोकों में श्रीभगवान अगले अध्याय की सूचना देते हैं। कहाँ-कहाँ मेरी विभूतियाँ प्रकट होती हैं। जो मुझे भजते हैं, उनमें मैं प्रकट होता रहता हूँ।

9.30

अपि चेत्सुदुराचारो, भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः(स्), सम्यग्व्यवसितो हि सः।।9.30।।

अगर (कोई) दुराचारी से दुराचारी भी अनन्य भक्त होकर मेरा भजन करता है (तो) उसको साधु ही मानना चाहिये। कारण कि उसने निश्चय बहुत अच्छी तरह कर लिया है।

विवेचन- इस श्लोक में श्रीभगवान कह रहें हैं कि दुराचारी भी अगर अनन्य भाव से, उनको पूजता है, उसके अन्दर के काँटे निकल जाते हैं, तो उसे मोक्ष प्राप्त हो सकता है।

पूर्वाश्रम में वाल्मीकि जङ्गल में रहते थे, लूट पाट करते थे। उन्होंने रामायण की रचना कर ली।

वाल्या डाकू ने नारद जी को पकड़ लिया। उनसे वाल्या ने जो भी है, देने को कहा। नारदजी ने कहा, उनके पास राम नाम धन है, उसे वे दे नहीं सकते। उनके पास तो एक मात्र वीणा है, जिसके तार को बाहर से छेड़ते ही भीतर-बाहर से राम नाम निकलता है। मञ्झीरे बजाता हूँ तो भी राम-राम, पेड़ के नीचे बैठता हूँ, अगर ऊपर कौवा काँव-काँव भी बोलता है तो राम-राम निकलता है। चिड़ियाँ चहकती हुई चीं-चीं भी करती है, तो शिव-शिव निकलता है। यह राम रत्न धन जो मेरे पास है, वह मैं तुझे देना चाहता हूँ, परन्तु इसके पहले तुझे पाप मुक्त होना होगा।

वाल्या ने कहा, मैं परिवार के भरण-पोषण के लिए लूट-पाट करता हूँ। नारद जी ने कहा, परिवार को पूछ कर आ, क्या वे तुम्हारे पाप के भागीदार हैं? वाल्या ने जाकर पत्नी और बच्चों से पूछा, तो सभी ने कहा, उनका भरण-पोषण उसका कर्त्तव्य है, वे उसके पाप के भागी नहीं हैं।
वापस आया तो वाल्या ने कहा, मेरे मुँह से तो राम-राम निकलता ही नहीं। क्या करूँ?

नारदजी ने उसे मरा-मरा जपने को कहा। मरा-मरा, राम-राम हो गया। दुराचारी वाल्या वाल्मीकि ऋषि बन जाते हैं। यह भक्ति का महात्मय है।

विवेक जागृत हो जाता है। अनन्य भक्ति से पापी भी सज्जन हो जाता है। मृत्यु किसी भी समय, किसी भी क्षण आ सकती है। मन के काँटे अभी से ही निकल जाने चाहिए। यह अभ्यास से ही सम्भव है।

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय।।

सब तरह के किल्विषों से मुक्त होना पड़ेगा। मृत्यु का कोई समय निश्चित नहीं है।

9.31, 9.32

क्षिप्रं(म्) भवति धर्मात्मा, शश्वच्छान्तिं(न्) निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि, न मे भक्तः(फ्) प्रणश्यति।।9.31।।
मां(म्) हि पार्थ व्यपाश्रित्य, येऽपि स्युः(फ्) पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रा:(स्), तेऽपि यान्ति परां(ङ्) गतिम्।।9.32।।

(वह) तत्काल (उसी क्षण) धर्मात्मा हो जाता है (और) निरन्तर रहने वाली शान्ति को प्राप्त हो जाता है। हे कुन्तीनन्दन ! मेरे भक्त का पतन नहीं होता (ऐसी तुम) प्रतिज्ञा करो।
हे पृथानन्दन ! जो भी पाप योनि वाले हों (तथा जो भी) स्त्रियाँ, वैश्य और शूद्र (हों), वे भी सर्वथा मेरे शरण होकर निःसन्देह परमगति को प्राप्त हो जाते हैं।

विवेचन- अन्यन भक्त को मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। श्रीभगवान बोलते हैं, मेरी पूजा का अधिकार शूद्र, वैश्य, स्त्री दुराचारी सभी को है। यह विषय बहुत से लोग ले कर आ जाते हैं कि स्त्री की तुलना शूद्र और दुराचारी से कर दी। श्रीभगवान ने इसलिए पहले ही कह दिया कि ये सब मेरे लिए उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं, जितने क्षत्रिय और ब्राह्मण हैं। सबको भक्ति का अधिकार है।

9.33

किं(म्) पुनर्ब्राह्मणाः(फ्) पुण्या, भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं(म्) लोकम्, इमं(म्) प्राप्य भजस्व माम्।।9.33।।

(जो) पवित्र आचरण वाले ब्राह्मण और ऋषिस्वरूप क्षत्रिय भगवान् के भक्त हों, (वे परम गति को प्राप्त हो जायँ) इसमें तो कहना ही क्या है। (इसलिये) इस अनित्य (और) सुखरहित शरीर को प्राप्त करके (तू) मेरा भजन कर।

विवेचन- ज्ञान मार्ग का अधिकारी बनने के लिए बहुत श्रम करना पड़ता है। यहाँ पर विराट रूप, विभूतियोग, ग्यारहवें अध्याय और भक्ति की चर्चा जो बारहवें अध्याय में आयी है, उन सबकी चर्चा से लगता है, आगे के तीन अध्यायों की पार्श्व भूमि तैयार कर दी है।

श्रीभगवान कहते हैं, अर्जुन एक छलाँग लगा क्योंकि अभी भी अर्जुन मैं और तू कर रहे हैं। जब मात्र तू रह जाएगा, तब श्रीभगवान प्रकट होंगे।

9.34

मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां(न्) नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवम्, आत्मानं(म्) मत्परायणः।।9.34।।

(तू) मेरा भक्त हो जा, मुझमें मन वाला हो जा, मेरा पूजन करने वाला हो जा (और) मुझे नमस्कार कर। इस प्रकार अपने-आपको (मेरे साथ) लगाकर, मेरे परायण हुआ (तू) मुझे ही प्राप्त होगा।

विवेचन- अन्तिम श्लोक में श्रीभगवान कहते हैं। हे अर्जुन! तू मेरा भक्त बन, पूजन कर, विनम्रता से झुक जा, अपनी आत्मा को परमात्मा से जोड़ ले। अब तेरी छलाँग लग जाए, तेरा मैं छूट जाए, मत्परायण बन, तभी तू मुझे प्राप्त कर सकेगा।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्नकर्ता- मीना कुमारी दीदी
प्रश्न- हमारे आस पास के जो लोग आग्रह करने पर भी गीता जी नहीं पढ़ते हैं, उनमें कैसे हम श्रीभगवान के दर्शन करें?
उत्तर- कोई भी मनुष्य पूर्ण रूप से दैत्य नहीं होता है। हम सभी में देवत्व भी है और दानवत्व भी है। अन्तर मात्र इतना है कि अभी उन्हें बोध नहीं हुआ है। हमारी प्रार्थना इतनी भर हो कि उनको बोध हो जाए और वे भी शीघ्र श्रीभगवान के स्मरण में लग जाएँ।

अर्जुन ने श्रीभगवान से पूछा कि स्थित प्रज्ञ कैसे होते हैं?

श्रीभगवान ने उत्तर दिया-

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।।2.55।।

तू स्वयं में सन्तुष्ट हो, दूसरों का मङ्गल उनका प्रारब्ध है। दूसरों की चिन्ता छोड़ दे।

प्रश्नकर्ता- राकेश भैया
प्रश्न- बत्तीसवें श्लोक का अर्थ बता दीजिए।
उत्तर-

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।।9.32।।

जो भी पाप योनि वाले हों या स्त्रियाँ, वैश्य और शूद्र हों, यदि वे मेरी शरण आते हैं तो निःसन्देह परम गति को प्राप्त हो जाते हैं। यहाँ श्रीभगवान ने स्त्रियों, वैश्यों और शूद्रों का उल्लेख इसलिए किया है क्योंकि श्रीभगवान इसमें कोई संशय नहीं रखना चाहते हैं कि कोई इन तीनों को कुछ भी स्थान दे लेकिन मैं निःसन्देह इनको परम गति का अधिकारी मानता हूँ।

प्रश्नकर्ता- श्यामा दीदी
प्रश्न- मेरी बिटिया का प्रश्न है-
प्रतियोगी परीक्षा में इच्छित और अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पा रही हूँ। जो प्रश्न आते हैं, वे भी नहीं कर पाती। मुझे क्या करना

चाहिए?

उत्तर- सर्वप्रथम आपको अपनी बुद्धि और मन को एक ही दिशा में लगाना होगा। यदि दोनों अलग-अलग दिशा में होंगे तो तनाव होगा।

आप सीधे बैठिए, जिससे आपके मस्तिष्क को अधिक ऑक्सीजन मिल सके। जब आपके मस्तिष्क को अधिक ऑक्सीजन मिलेगी तो आपका मन और बुद्धि दोनों साथ हो जाएँगी। परीक्षा से पहले पाँच तक गिनती करके श्वास लें और पाँच तक गिनती करते हुए श्वास छोड़ें। ऐसा करने से भी मन और बुद्धि दोनों साथ हो जाएँगी।

अपने सिर पर से अपेक्षा का बोझ हटा दीजिए। ज्ञान के लिए पढ़ना आरम्भ कीजिए। अच्छे महाविद्यालय की अपेक्षा त्याग कर अपना कर्म सौ प्रतिशत कीजिए। तब आपका प्रदर्शन उत्तम होने लगेगा।

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।12.14।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यूँ) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्याय:।।

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'राजविद्याराजगुह्ययोग' नामक नवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं

पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||